किशोर कविताएं

लेखिका संघ

८११.८
किशो/-

किशोर कविताएं

लेखिका-संघ

आत्माराम एण्ड सन्स

कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006

© आत्माराम एण्ड सन्स

मूल्य : पन्द्रह रुपये

प्रथम संस्करण 1986

प्रकाशक

आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-110006,
शाखा 37 अशोक मार्ग, लखनऊ

मुद्रक

आर० के० भारद्वाज प्रिंटर्स,
बाबरपुर रोड, शिवाजी पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032

KISHORE KAVITAYEN LEKIHKA SANGH

विषय सूची

भावी पीढी प्रतिवेदन	अनुभूति चतुर्वेदी	5
हुकूमत	अनुभूति चतुर्वेदी	6
नदी से	अर्पिता अग्रवाल	7
पहाडो पर गिरी	अर्पिता अग्रवाल	7
तुम देखना मा	अरुणा कपूर	8
इनसे मिलिए	अरुणा कपूर	10
लेकिन क्षण ही	आशारानी व्होरा	13
मैने सीखा	इन्दु जैन	15
जन्म दिन	इन्दु जैन	16
खडहरो का गीत	इन्दु जैन	17
सकल्प	इन्दिरा मोहन	18
नया सृजन कर दो	डा० उषा बाला	19
क्या आएगा वह युग एक बार	डा० उषा बाला	21
समता की धूप	उर्मिला निरखे	23
सीता या सावित्री	कमला सिंघवी	25
इन ठहरे पलो मे बधो	किरण जैन	27
नया युग-बोध	किरण जैन	28
नया अर्थ	किरण जैन	28
लेखन से	कुन्था जैन	25
अनुशासन	डा० कुसुम सेगर	31
मुक्ति	दुर्गावती सिंह	32
तेरी-विदाई	दुर्गावती सिह	33
रिश्ता	दुर्गावती सिह	34
निर्झर	दुर्गावती सिह	34
हिन्दी	नवीन रश्मि	35
भारत मां	पोपटी होरानन्दाणी	36
फूल और जिन्दगी	बसन्त प्रभा चावला	38
मेरे बच्चो	डा० मधुर मालती सिह	40

गजल	मधु भारती	42
तुम्हारी नई चेतना	मीना अग्रवाल	43
माँ	मीना अग्रवाल	44
कौन हो	रजिया तरसीन	46
इन्द्र धनुष	डा० रमा सिंह	47
धर्म युद्ध	रजना अग्रवाल	48
अकुर	रश्मि मलहोत्रा	50
स्नेह-स्मरण	राज भटनागर 'देवयानी'	52
उसी डाल पर	विजय सती	53
महानगर मे	विजय सती	53
अनजानी राह	विनीता बेदी	54
श्रम	शीला गुजराल	56
जारा	शीला गुजराल	57
हम चले वीर जवान	शीला गुजराल	58
हे तरुवर इतना बतला दो	सरला टडन	60
मै नदिया की शीतल धारा	सरला टडन	61
हसिकाए	सरोजनी प्रीतम	63
बदनीय गाधी	सरोज शर्मा	64
न बटेगी धारा	सरोज कौशिक	65
सितारो की नाव	सावित्री परमार	66
राष्ट्र गीत	सावित्री शर्मा	68
भगवान के घर मे	सुनीता जैन	69
समय का महत्व	डा० सुनीला झा	70
परम्परा	डा० सुधा जैन	71

भावी पीढ़ी प्रतिवेदन

—अनुभूति चतुर्वेदी

तुम क्यो अनायास
इस वसुन्धरा को
असहाय छोड गई
अभी तो बीज अकुरित ही हुए थे
उसे पुष्पित होते तो देख लेती
अपनी मिट्टी से उपजी
भावी सन्तानो को तो
मार्गदर्शन कराती
क्रूरकाल के पजो ने
अनायास ही तुम्हे ग्रस लिया
तुम निहत्थी थी
और मानवता बेखबर
नही तो सपूर्ण वसुन्धरा
तुम्हे उस क्षण
फूलो की तरह उठा लेती ।

हुकूमत

—अनुभूति चतुर्वेदी

यह हुकूमत
जहा सब ओर बौखलाहट है
चुपचाप कोई सो जाता है
शहर जागता है
कुछ दुराचारी हाथो मे
खिलौने बन गई है स्टेनगन
यहा सब यूँ ही चलता रहता है
बिना हाथ पाव के
स्नेह यहा मजाक है
चाहे प्रिया से हो
या देश से
हुकूमत अब उदासीन हो रही है
क्योकि नस्ले कमजोर, व नासमझ है
न जाने फिर कब
कोई नानक, गाधी, सुकरात, विवेकानद
पैदा होकर
एक स्वस्थ साम्राज्य
का
सूत्रपात करेगा ।

नदी से

—अर्पिता अग्रवाल

नदी से बहाये गए
पत्थर की तरह
ऊपर टिक गया है
बादल का टुकडा
या बच्चे के हाथ मे
बुढिया के बालो का एक गोला
और
मेरे साथ बहती एक नदी !

पहाड़ो पर गिरी

—अर्पिता अग्रवाल

पहाडो पर गिरी
बादलो की परछाईयो के साथ-साथ
चलती रही हूँ
और
मानने लगी हूँ
मैंने आसमान को बाँध लिया है।

तम देखना माँ

—अरुणा कपूर

मैं
रौंदना चाहता हूँ पहाडो को
तोडना चाहता हूँ हर किनारो को
उमडती आँधियो को उन पर फेक
मिटा देना चाहता हूँ,
इस शहर की हर खुशहाली का नामो निशान
तुम्हारी कोख मे अभिमन्यु से बैठे हुए
पहला सबक लिया था मैंने
विद्रोह
दूसरा—स्पर्द्धा
तीसरा सघर्ष
मन ही मन घुटते हुए
तुमने जो बिताए थे वे दो मास
उस समय
मैं चुपचाप करता रहा आत्मसात
तुम्हारी कुठाए, उनकी निर्धारित वर्जनाए
तुम लड रही थी भीतर ही भीतर
समाज से, घर वालो के अत्याचारो से
नारी होने की पाप की सजा मे
मैं बराबर का भागीदार रहा तुम्हारा

हां मां। इस युद्ध की तैयारी
तुम्हारा स्तन पान करते समय
हुकारते हुए की मैने
तुम्हारी खुरदरी उगली पकड
मीलो चलना सीखा मैने
क्षीण होती तुम्हारी दृष्टि के बल पर
पाठशाला की हर कक्षा फलागता गया
कही खरौच भर लगने से मेरे अस्तित्व पर
आती है गध तुम्हारे ही लहू की
मेरा पौरुष भी तो तुम्हारी ही देन हे मां
एक समर्थ पुरुष बनने के बाद
आज मै पीछे हटूँगा नही
सर्वत्र हा-हाकार मचा दूगा
कोई आये मेरे सामने
उसे जिन्दा ही जला दूँगा
तुम अशक्त थी
मजबूरियो की बेडी मे जकडी हुई
नियति की दुहाई दे सब सहती रही
किंतु
तुम देखना मां
वह सब मै करके दिखलाऊगा
तुम्हारे भीतर
जो छिपी चाह बनकर
बरसो तुम्हारे भीतर कुनमुनाता रह।
वह विनाश का बीज
अब एक विशाल वृक्ष बन गया है
अभी हाथ बढागेगा वो
आकाश झुका देगा तुम्हारे चरणो मे।

इन से मिलिए

—अरुणा कपूर

आप इससे मिले हैं ?
यह जो नन्हा माधो
चौराहे पर
अपने मैले कपडे से
कारो के शीशे चमकाता है
साहब फिर भी
हरी बत्ती होते ही
उडा ले जाता है अपनी कार
पोछता रह जाता है वह अपनी आखे ।

आप इस केशव से मिले हैं ?
कनाट प्लेस के एक अधेरे कोने मे
पुलिस वालो की आख बचा बैठा हुआ
चवन्नी मे जूते चमका रहा है
बडा मन था इसका पढकर
बाबू बनने का
लेकिन
विधवा मा और पाच भाई बहनो का
पेट भरता है इसी की कमाई से ।

यह जो सूगली सी रधिया
गजरा बेच रही है सडको पर

इसे तो पहचानते ही होगे
खेलने खाने की बाते छोड
यह नन्ही बुढिया
हर आने जाने वाले को
महगाई का वास्ता देकर
एक सस्ता गजरा खरीदने की बात कहती है।

इस रामू को तो अवश्य पहचानते होगे आप
सगीत की धुन पर थिरकता
टेबुल साफ करता
दौड दौड कर
आपकी हर फर्माइश पूरी करता है
घर से भाग कर आया है
ये मा का लाडला

बाइस्कोप का हीरो बनने
इस बडे शहर मे
जीवन के चक्रव्यूह मे फसकर
बेचारा ढूँढ रहा है
प्यालो और प्लेटो की गोलाईयो मे
किस्मत का छोर।

इस नन्हे सोहन सिह की कघियो से
कई बार सवारे होगे
आपने अपने बिखरे बाल
कघिया, पिन, क्लिप
सभी रहते है इसके पास बेचने को
पर इसकी जूडी
हमेशा बिखरी रहती है
बाप उसे बहुत मारता है
मा उसे चैन से बैठने नही देती
यह परिवार का कमाऊ बेटा है।

यह रेशमा है
बडी होकर शायद पर्दा नशी हो जाय
अभी तो अपनी बूढी दादी के साथ
"मेमसाब" के बच्चे खिलाती है
साहब का हर आर्डर बजा लाती है
मा-बाप कब मरे ?
यह भी याद नही इसे
बचपन से सीधे बुढापे मे कदम रखा है इसने
जवानी क्या है
उप पर "पर्दा" पडेगा
तब शायद समझेगी
अभी नो बुढापा झेल रही है दादी के साथ ।

नन्हा माधव
किशोर केशव
सूगली रधिया
मा का लाडला रामू
बचारी रेशमा
एक दूसरे को नही जानते
हमारी आपकी तरह
घूमने फिरने का समय नही इन्हे ।

इनके नाम-धर्म-काम
म्युनिसपैलिटी के खाते मे
अलग अलग भले ही दर्ज हो
किंतु सबकी बिरादरी एक है
ग री बी ।

लेकिन क्षण ही

—आशा रानी व्होरा

क्षण ऐसे भी
ज्योतित
जैसे 'निओन लाईट' के
बल्बो की कतार !
क्षण ऐसे भी
गर्वित—
जैसे ऐवरेस्ट पर
स्त्री विजय के
समाचार !
ऐसे क्षण भी
सार्थक
जैसे अपनी प्रिय रचना पर
प्रथम पुरस्कार !
क्षण ऐसे
उत्तेजित भी
जैसे परमाणु विस्फोट से
अहिंसक सोच मे
आया ज्वार।
ऐसे कितने
लेकिन क्षण ही।
शेष—

दिन और रात
बरस और युग
जैसे भारी भरकम शव को
ढोते कहार।
थका तन, थका मन
बुझी-बुझी आखो मे
अगले किसी ज्योतित क्षण का
मरता खुमार—
जैसे डूबता हुआ सूरज
फेक रहा
लाल, पीली
और स्याह किरणे
एक साथ।

मैंने सीखा

—इन्दु जैन

शिखरो से—
दर्शन का गौरव
झरनो से—
बेसुध पागलपन
ठडी बयार से—
सिहर सिहर
चीडो का वंशी हो
गाना
नदियो से सीखा
बर्फीली जडता
को अनथक पिघलाना
बादल से—
भटक उतर आना
ठोकर खा
कही बरस जाना
पत्थर से -
कोमल बालू
की पिघली चाँदी
सा गल जाना
— मैंने सीखा

जन्मदिन

—इन्दु जैन

राम, तुम जन्म लेते हो बार-बार
हर बार जब छोटी छोटी सुविधाओ का लोभी राक्षस
मेरे भीतर
मूल्यो के यज्ञ मे उत्पात मचाता है
तुम्हारा तीर खाता है ।
मारीच की तरह नाटता है जब-जब
ऊँचे मकान, बैंक-बैलेंस, गद्दी पदवी
का सुनहरी लबादा ओढे -
तब-तब मेरी सीता-आत्मा चोरी चली जाती है
जिदगी के माथे पर दर्द की शिकन सी खिची
लक्ष्मण-रेखा
तुम्हारे धनुष की डोरी सी तन जाती है,
दश-शिर प्रलोभनो से घिरी एक तर्क-बुद्धि
जब मुझसे बीसियो अपहरण कराती है
आत्मसम्मान, दर्प, अह, प्रभुत्व, ज्ञान, तेज के
असख्य बहानो से
मेरी लघ-वृत्ति सहलाती, फुसलाती है—
तब-तब तुम्हारे एक अग्नितीर की प्रतीक्षा मे
मनचाहे मेरी लका सुलगती है,
अपने बनाए व्यूह से छूटने की
अपने ही भीतर न जाने कितनी बार
रामनवमी होती है -

खडहरों का गीत

—इन्दु जैन

कौन कहता है कि हम ख़ामोश हैं ?
देखिए, सुनिए—अगर बाहोश है !
झेल पाएगे हमारी दास्ता ?
आपही के राज़ तो दरपोश हैं !
गा रहे पुरखो की जीते, हार भी
बज रहे पत्थर मे सुर भी, तार भी
आज भी घोडो की टापे, पालकी की घटिया
सरसराते रेशमी पल्लू मे लिपटी शोखिया—
जाग जाती है हवा के साथ-साथ
झिल्लिया झीगुर बजाते है सितार
याद के चिमगादडो की हर उडान
दस्तके देकर जगाती—
आप पर मदहोश है !
कौन कहता है कि हम खामोश हैं !

सकल्प

—इन्दिरा मोहन

राष्ट्र के नव सृजन की बेला निमत्रण दे रही
एक जुट हो बढ चलो सकल्प हमसे ले रही।

देखकर क्यो भेष भाषा भिन्नता मे बट गये
कर्म के आवेश मे क्यो धर्म पथ से हट गये
एक माता के दुलारो खून का रग एक है
देश मे नदिया अनेको भाव धारा एक है

आज तरुणाई हमारी नाव खुद ही खे रही
एक जुट हो बढ चलो संकल्प हमसे ले रही।

एक होकर है लडी अस्तित्व की हमने लडाई
भेद भावो को भुलाकर देश की सीमा बचाई
दिव्य भारत सभ्यता सहयोग के अगन पली
सत्य शिव सौन्दर्य गरिमा सर्वहित मे हैं ढली

अग्रगामी चेतनाये कब कही पीछे रही
एक जुट हो बढ चलो सकल्प हमसे ले रही।

स्वार्थ गठबधन छलावे देश के पीछे रहे
राष्ट्र शाश्वत है विकालातीत सब मिलकर कहे
एक हो परिवार व्यापक यत्न सब मिल कर करे
प्रगति पथ पर बढ चलो सग साथ सुखदुख सब सहे

विषमता युग की हमे फिर से चुनौती दे रही
एक जुट हो बढ चलो सकल्प हमसे ले रही।

नया सृजन कर दो

—डॉ० उषा बाला

तुम
नए वर्ष मे,
नया सृजन कर दो।
मोम बना दो,
पत्थर को,
पिघला कर,
अपनी बुद्धि
और सबल से,
तुम नया सृजन कर दो।
स्वर्णिम सुन्दर भोर प्रभा मे
उमग राग भर दो
सूरज की
पहली किरणो मे,
स्निग्ध
ऊष्म भर दो।
आशा की नव
जोत जला दो,
तुम नया सृजन कर दो।
नव मगल गीतो की
रचना कर दो
सप्त स्वरो से

हो झकृत
हिल उठे हर ओठ
एक ही स्वर मे
प्रीत मे डूबे
शरो से
तुम नया सृजन कर दो
सुमन ऐसे उपवन मे
तुम खिला दो
सुगध से जिनकी
सुवासित हो कण-कण
अतृप्त हो जो
सदा से
तृप्त हो सके अब
ऐसा गुल नया कोई
खिला दो
तुम नया सृजन कर दो
निज दृष्टि के तीव्र शरो से
भावो और विचारो से
हलचल का ससार बसा दो
भू-नभ तक झकार बसा दो
तुम नया सृजन कर दो ।
कभी न सोचो, तुम नादान
साबित कर दो हो बलवान
कर सकल्प बनो विद्वान
नवल शक्ति से
नव-शक्ति से
नव-मानव रच
सत शिव सुन्दर के ढाँचे मे
तुम नया सृजन कर दो ।

क्या आएगा वह युग एक बार?

—डॉ० उषा बाला

क्या आएगा वह युग एक बार,
जिसमे सुन्दर सपने हो साकार ?

जहा इन्द्र धनुष के फूल खिले हो,
धरती और आकाश मिले हो,
लहलहाते जहा खेत खडे हो,
पछी कलरव करते—हो ।

क्या आएगा वह युग एक बार,
जिसमे सुन्दर सपने हो साकार ?

झर-झर करते झरने हो,
कल कल करती नदिया हो,
सात स्वरो से चमन गु जे हो
पछी चेन से सोये हो ।

क्या आएगा वह युग एक बार,
जिसमे सुन्दर सपने हो साकार ?

भूख से कोई बेहाल न हो,
भाई-भाई के गले मिले हो,
आपस की तकरार न हो,
अमन शाति की बहार हो ।

क्या आएगा वह युग एक बार,
जिसमे सुन्दर सपने हो साकार ?

चेहरे न हो कोई उदास से
भरे हो दामन खुशियो से,
वाणी से झरते फूल हो
सबको भर-पूर प्यार मिला हो ।

क्या आएगा वह युग एक बार,
जिसमे सुन्दर सपने हो साकार ?

जहा अस्त्रो की झकार न हो,
धरा पर लहू का निशान न हो,
न चीखो की कोई पुकार हो,
न लपटे छूती असमान हो ।

क्या आएगा वह युग एक बार,
जिसमे सुन्दर सपने हो साकार ?

कपटी की कोई चाल न हो,
देश द्रोह के मिटे निशान हो,
राष्ट्र ध्वजा का विपुल मान हो,
ऊच-नीच का भेद मिटा हो ।

क्या आएगा वह युग एक बार,
जिसमे सुन्दर सपने हो साकार ?

समता की धूप

—उर्मिला निरखे

समता की धूप खिली है
सबको समभाव मिली है।

क्यो अतर है अपनो मे
जुग बीते क्यो सपनो मे
यह सूरज अपना सबका
देखो जागा है कब का

नीलाभ की उजली आभा
सबको समभाव मिली है।

कोई झूले चदन पलना
कोई जन्मा फुटपाथो पर
कोई चादी थाल सजाये
कोई दिन काटे फाको पर

पर धरती की हरियाली
सबको समभाव मिली है।

माँ भारत की सतानो
माँ के अपने अरमानो
झूठी चकमक को भूलो
सच्चाई को पहचानो

कटिबद्ध रहो सर्जन मे
आस्था समभाव मिली है ।

तुम एक बना लो नारा
मिटे भेद भाव यह सारा
जन-जन मे ज्योति जला दो
चैतन्य सभी मे ला दो

अभिनव प्रेरक प्रतिभा
सब को समभाव मिली है ।

सीता या सावित्री

—कमला सिंधवी

सावित्री और सीता मे से
यदि मुझे बनना पडे कोई एक
तो मै सीता बनना चाहूगी ।
सावित्री सती थी,
अपने सत् से सत्यवान् को पुन जीवित कर सकी।
पति सुख भोगा, सुख से रही ।
सीता भी सती थी,
राम के साथ रही
वनवास भोगा ।
रावण द्वारा छली गई,
फिर भी एकनिष्ठ पतिव्रता रही ।
अपने ऊपर लगाये गये झूठे लाछन को
अग्नि-परीक्षा देकर नकार दिया—
किन्तु अपने अपमान को न भुला सकी।
सावित्री को यह सब नही सहना पडा,
सह कर असहिष्णु नही बनना पडा ।
सीता ने धरती को फट जाने का आदेश देकर
अपने अस्तित्व को अनुबधित होने से बचा लिया ।
और धरती ने उसके इस अस्तित्व-बोध की खातिर
उसे अपने मे समा लिया ।
राम ने सीता के साथ केवल चौदह वर्षो का

वनवास भोगा था।
सीता ने धरती मे समा कर अनबोले ही
राम को शेष जीबन का वनवास दे दिया ।
यदि वह पुन अपनी लज्जा, अपनी मर्यादा भूलकर
राम की अकशायिनी बन गई होती,
तो सदा के लिए सीता पर से मेरी
आस्था खो गई होती,
और मै सीता से सावित्री बनने की चाहना मे
गुमराह हो गई होती !

इन ठहरे पलो मे बंधो

—किरण जैन

इन ठहरे पलो मे मत बधो
समय-धारा की ये दो-चार बूदे
तट की हरियाली बनने को ललचायी थी
पर हरहराते बेग के हाथो
घसीट ली गयी,
जिन्दगी की फिल्म से कतर दिये गये,
इन सेन्सर्ड पलो मे मत बधो
कब्रो-से घूरते
इन मुर्दा पलो मे मत बधो
तुम जो कि गतियो की बाहो मे
दूर-दूर की यात्राए करते हो
तुम जो कि एक बटन को दबाकर
बरसो की साधना को भोगते हो
तुम जो कि कोने कोने के
ज्ञान-विज्ञान के स्वामी हो
तुम जो कि एक गति हो
वन्या का प्रवाह हो

नया युग-बोध

—किरण जैन

किताबो के पहाडो से घिरे
लालटेन की रोशनी मे
अक्षरो पर झुके ओ सिर !
ज़रा पूरब की खिडकी तो खोल
देख
आकाश रग गया है
सूरज की लालिमा से

नया अर्थ

—किरण जैन

न जाने कौन हवा बही
कि मीलामील उजडे मैदान की
बजर परती को तोड
उग ही आया एक अकुर
छतनार वृक्ष दिया उसे
एक नया अर्थ दिया जिसने ।

लेखन से

—कुन्था जैन

बीत गई बातो को गाना छोडे
जो गुजर गया, उसको गुन कर
किस्मत की लगाम मोडें ।

बहुत बखाना भारत गौरव
रसमय हो कविता मे डूबे
शब्दो के ताने बानो से
रीझे, खीझे जरा न ऊबे ।
चाट चाशनी बीते युग की
कितना लिक्खा, कितना बोले
ढोल बजाये आसमान मे
सदियो के यश पन्ने खोले

गौरव की गाथाए उतरी,
लाखो सतरे बन कागज पर
देश-प्रेम की भाव उर्म्मियाँ
हुई तरगित बाहर-भीतर
बालू ढोले, ढहे ठसक के
लहरे सोई पानी मे
ठडी सीलन बाढ ज्वार बन
उमडी घुमडी वाणी मे

× × ×

कलम बने, हल हँसिया खुरपी
तोडे चिकनी पपडी को
कथा-गीत, फौलाद फावडे
नई जान दे धरती को।
शब्द, अन्न के पौष्टिक दाने
लाल, रगों मे लहू भरे
लीपा-पोती बहुत हो चुकी
ताज़ा अब निर्माण करे।

अनुशासन

—डॉ० कुसुम सेंगर

तुम स्वय उठो अनुशासित हो
खुशहाली खुद आजाएगी ।
जो रामराज्य है तुलसी का
उसकी रचना कर सकते हो
विद्युत मे गर्जन-तर्जन तुम
बादल मे जल भर सकते हो
तुम प्रकृति प्रभु बन सकते हो
कुछ भी सभव कर सकते हो
हे बाल बनो गिरधारी तो,
गिरवर की शक्ति लजाएगी ।

तुम स्वय उठो अनुशासित हो,
खुशहाली खुद आ जाएगी ।

स्वर्णिम इतिहास तुम्हारा है,
फिर से उसने ललकारा है ।
गीता का ज्ञान भुला बैठे ।
बाइबिल की आन मिटा बैठे ।
नानक के शब्द बुलाते है ।
पगबर याद दिलाते है ।
गौतम गाधी की धरती का,
इतिहास तुम्हें लौटाना है ।

भारत ही क्यों ? धर शान्त चरण
पूरा ससार चलाना है
पतवार अहिंसा की ले लो
तो विश्वभूमि तर जाएगी ।

तुम स्वय उठो, अनुशासित हो,
खुशहाली खुद आ जाएगी ।।

मुक्ति

—दुर्गावती सिंह

जिस दिन मैंने
उडान भरी
धरती छूट गयी
आकाश फैलता चला गया ।

तेरी बिदाई

—दुर्गावती सिंह

मेरी बेटी
तुम्हारी नन्ही उगलिया पकड मैने
बीहड रास्ते पार किये है
तुम्हारे नन्हे पगचिह्न
असीम तक खीच ले गये है
तुम्हारी किलकारियो मे
उल्लास
तुम्हारे हठ से
उद्यम
तुम्हारे साथ साथ
कविता की खोज की है मैंने ।
मेरे आचल मे खिली है धूप
छोर मे बधा है आकाश
लेकिन मेरी बेटी यह सब तब हुआ
जब तू छोटी थी ।
मेरे पावो मे आज महावर लगी है
हाथो मे मेहदी
प्यार की अनुराग की
लाल लाल बिदिया तेरे माथे पर है
बता तुझे मै क्या दूँ ?

संस्कार
जो बेमेल है
परम्पराए
जो पगु हैं
आज मैं तेरी बिदाई मे
खोछा भर देती हूँ प्यार
अजुरी भर दूधिया चादनी
जो तुझे दुलराये नहलाये ।
सूरज के सग तू उगे
चादनी मे खिले ।
मेरी बेटी
अब तू बडी हो गई है
और दुनिया बहुत छोटी ।

रिश्ता

—दुर्गावती सिह

पेड जब बडा हो जाता है
आदमी को अपने
फल-फूल बाटता है
आदमी जब बडा हो जाता है
पेड को काटता है ।

निर्झर

—दुर्गावती सिह

धार पत्थर पर
सिर पटकती लगातार
टूटती फिर भी नहीं

हिंदी

—नवीन रश्मि

मेरी हिंदी हर दूरी मे पास है ।
सपनो की गति मे जीवन की साधना,
अकित करती सहज सुकोमल भावना,
व्यापक उसकी श्वासो का उत्कर्ष है,
परिलक्षित सकल्प, विकल्प विमर्ष है,
हिम गिरि की गरिमा से रजत प्रकोष्ठ मे
मेरी हिंदी कैलासी विश्वास है ।
कलरव की मृदुला, सुषमा अनुराग की,
मलयज की चेतना, गध पराग की,
वातायन पर बिखरे हुए स्नेह मे
आच्छादित अभिलाष सचिता श्वास मे,
मेरी हिंदी धरती पर आकाश है ।
इसके श्री चरणो मे श्रद्धायुक्त नयन
विश्वबन्धु है मेरी हिंदी के चरण
चचल लहरो पर आस्था का सेतु है ।
लहराता उत्तुग सत्य का केतु है,
सत्य, शिव, सुन्दर के उद्यान मे
मेरी हिंदी मधु श्रुतु का सुविकास है ।

भारत मां

(सिन्धी से हिन्दी मे अनूदित)

—पोपटी हीरानन्दाणी

मेरे दादा ने
जो गेहू का दाना खाया था
नदी के पानी का जो घूट पिया था
रक्त बन कर
मेरी रगो मे दौड कर
शोर मचाने लगा
तो फिर मैं क्या करता ?
मेरी मा की माग को उसने छुआ अगुली से
तो मैंने उसका हाथ काट दिया ।
मे तो चाहता था
कि
मा के सर का एक एक बाल
काला काला नाग बन कर
उसको डस ले
फिर सोचा
बेटे के होते हुए
मा थोडे ही लडती है
तू मुझे कत्ल करेगा ?
अरे, तू जानता नही,

जिस प्रकार ईख की फसल काटने से
फिर ढेर सारे गन्ने पैदा हो जाते हैं
उसी प्रकार
मेरे मरने से
मा के लाख दो लाख
बेटे पैदा हो जायेंगे ।
तू मेरा पेट फाडेगा ?
फिर तो मेरी सूखी आतो पर से
पवन लहरा के चलेगी
तो दूर दूर तक एक आवाज गूँजेगी
मेरी भारत-मा
मेरी भारत-मा !

फूल और जिन्दगी

—बसन्त प्रभा चावला

रात गुजरी फिर सवेरा आ गया,
कान मे धीरे से कोई कह गया,
यूँ पलाव पकाना अच्छा नही,
वक्त यह बरबाद करने का नही।
चल जरा चल करके देखे बाग मे,
क्या हवाऐ फूलो से कुछ कह रही,
क्या खुशी के गीत भवरे गा रहे।
कौन सी किसलियो के घूघट खुल गये,
और किन फूलो की पाखुरी धुल गई।
छोड बिस्तर चल पडी मै बाग को
देखती ही रह गई उस राज को।
कि हवाऐ झूमती सी कह रही,
फूल रे तू देख तेरी ज़िन्दगी,
का मजा लेने को भवरे आ गये।
झूमती इठलाती सी यह तितलिया
बैठी तुम पर खोल अपने पख रे,
जुड गया मेला तुम्हारे चारो ओर
हो गया मदमस्य तू सुख से विभोर।
ओ अनाडी जान भी पाया न तू,
कि जिन्दगी तेरी खत्म होने को है,
और भवरा भी अभी उडने को है,

यह तितलियो के मेले भी उड जायेगे,
और आपस मे यह कहते जायेगे
मिट चुकी रगत है अब इस फूल की,
सूखती-सी रह गई बस पखुडी,
बे-स्वाहा बेमजा यह फूल है
और झरने को भी कितनी देर है,
था खडा माली भी उसको ताकता,
देखती ही रह गई मै पास मे
और हवा ने जोर अपना पकड कर
ला गिराया धूल मे उस फूल को
ले उसासे झुक गई मै फूल पर
और कहा ऐ फूल तेरी जिन्दगी भी धन्य है,
तू हसा जग के लिए और मिट गया इस धूल मे,
कितनी छोटी थी तेरी यह जिन्दगी,
कितनी थी भरपूर और बेशकीमती !

मेरे बच्चो

—डॉ० मधुर मालती सिह

तुम्हे अपनी पहचान बताऊ
क्या तूम मुझको पहचानोगे ?
बूझो बच्चो जल्दी जल्दी
रामू श्यामू नन्ही तुम भी ?
चढे चैत मे बौर आम का
बनकर झूमू झूमू,
बैसाखी आते आते मे
गुलेनश्तर मे फूलू।
जेठ मास मे देखो मुझको
अमलतास के झुमको मे
झुक झूमी आसाढ गरज
मै नही डरू टपके से।
बौराए कचनार गुलाबी
हसू खिलखिलाती इठलाती
सावन के झूलो मे झूलू।
भादो आया बिजली चमकी
वह देता था मानो धमकी
पर मैने माना कब डर
मै नही डरी दुर्दिन से।
सूर्य देवता से विनती की
मैंने, "प्राण बचाओ"

ओ अगस्त्य तुम ही सक्षम हो
जल सदोह पी जाओ ।।
करी उन्होने कृपा मुझ पर,
प्रार्थना की बलिहारी ।।
क्वार कार्तिक मार्गशीर्ष
और पूस महीने की
ठिठुरन मे,
सूर्यदेव साथी अपने थे
आया माघ हवाए तब भी
तन छेदे थी मेरा,
पात पात पीला पडता था
जीवन का रस मेरा ।
नही हार मानी विपदा से
कडी चुनौती मेरी ।
अपने ही रस से सीची
मैने जीवन की बेली ।
फागुन के स्वागत को मेरा
रोम रोम आकुल था,
आया वह दिन भी, मानो तुम
रग अबीर पलाश लुटाता ।
बच्चों क्या पहचाना मुझको ?
''मै प्रकृति'' बलिहारी,
निडर प्रफुल्ल,
निरन्तर जूझी विपदा से,
हारी कब मै हारी ?
मेरे बच्चो दूध हमारा
तम न कभी लजाना
ऐसी ही निर्भीक जिन्दगी
सदा बिताते जाना ।।

ग़जल

—मधु भारती

जो छाह को तरसाए वो आगन न चाहिए।
जो फूल को ठुकराए वो उपवन न चाहिए।
हमको पनाह की जगह जो फाँसिया ही दे
ऐसे घिनौने रेशमी दामन न चाहिए।
सीताहरण को देख के चुप है जटायु अब
इन रक्षको का हमको गूगापन न चाहिए।
नगा करे जो द्रौपदी की आन बान को
ऐसे किसी धृतराष्ट्र का शासन न चाहिए।
ज्वालामुखी के मुह पे जबकि देश है खडा
ऐसे मे जो सो जाए वो चारण न चाहिए।
घर मे जल की बूंद बाहर सिन्धु बन गए
हमको तो ऐसे दोमुंही सज्जन न चाहिए
बरसे तो लाए बाढ जो रूठे अकाल हो
ऐसा हमे यह नासमझ सावन न चाहिए।
अपना हो पराया हो दुर्लभ हो या चमकीला
जो बिम्ब को धुधलाए वह दर्पण न चाहिए।

तुम्हारी ईन चैतना

—मीना अग्रवाल

तुमने जो नई चेतना
की फसल बोई है
मुझे मालूम है मेरे
युवा साथी
तुम्हारी तपस्या
व सवेदनशीलता की
आच मे पक पक कर
सारा देश
एक उत्सव—एक समारोह
बनकर उमगेगा
उल्लसित होगा
जो साधनहीन लोग
स्नेह की ग्रोस तक
को तरस रहे थे
अब ग्राकण्ठ ग्रमृत
का पान करेंगे ।

माँ

—मीना अग्रवाल

कल हम सबने मिलकर
कनेर बोए
पल पल महके
छण छण लहके
बडे हो गए
चाद की परिक्रमा करके आए
तो मा ने मीठे पुए बनाए
जिमाने लगी तो
रोई, सिसकी भरी !
अरे माँ कहो तो
तारे तोड लाए
ससार के सारे रत्न
तुम्हारी झोली मे डाल दें
बूढी थकी दृष्टि उठाई माँ ने
तो बोली
मुझे रत्नो व तारो की नही,
तुम्हारी जरूरत है
हमने अगल बगल
एक दूसरे को देखा
मुस्काए
हम तो यहीं हैं

तुम्हारे पास
तुम्हारे आचल तले
पर मेरे प्यारे सपूतो
तुमने अपने आसपास
जो तीर तलवार
एकत्र कर लिए हैं
उन्ही से डरती हू
मेरे लालो
तुम इनका उपयोग
जब कभी भी करोगे
मेरी ही कोख लजाओगे
इतनी उन्नति
इतना श्रम
जो तुमने किया
न तुम्हारे काम आएगा
न मेरे ।

कौन हो

—रजिया तरसीन

कौन हो तुम, प्यार की दुहाई देते ?
कौन हो तुम, मुहब्बत की परछाई जैसे ?
बच्चे हो मासूम हो
हम शक्ले-खुदा हो —
तुम जाने वतन, आने वतन, शाने वतन हो
तुम ख्वाबे चमन अरमाने चमन, ईमाने चमन हो
गुल तुमपे निसार, हम तुमपे फिदा
ज़ीनत हो चमन की, कि हो तकदीर वतन की
कॉटो की जमी है, सुलगता हुआ आँगन है
पर तुममे नमी है, मजबूत इरादा है ।
भुलमोगे न झल्लाओगे ये मुझको यकी है
हरियाए हसी पेड से लहराते रहोगे ।

इन्द्रधनुष

—डॉ० रमा सिंह

नभ मे उग आई लो
रग भरी रेखा एक टेढी-सी
जिसको हम इन्द्रधनुष कहते है।
उमड घुमड कर अभी—
बादल ये बरसे है
महक उठी धरती और
फूल पत्ती पौधे सब सरसे है ।
जीवन मे इसी तरह
दु ख की घटाओ का
अधेरा है,
इसके भी पीछे शायद
रगो का घेरा है,
आशा के एक इसी तर्क पर—
दु ख और दाह हम सहते है।
जीवन के इसो आकर्षण को
इन्द्रधनुष कहते है।

धर्मयुद्ध

—रंजना अग्रवाल

शायद तुमने कभी पढा था
कुरुक्षेत्र का इतिहास
उसे पढकर
तुमने ओढ लिया
पाडवी व्यक्तित्व
और
कलयुगी कृष्ण की आखो मे धूल झोककर
जीत लिया
इस युग का धर्मयुद्ध
और हम
इस युग के पाडव
बदी है तुम्हारे लाक्षा गृह मे
कौन जाने
युग अपना इतिहास दोहरायेगा
कोई विदुर आयेगा
जो बचा ले हमे
या कि हम
इस युग के पाडव
हम कौरवो के हाथो छले जायगे
और
अतत

भस्म हो जायेगे
पर हमे गर्व है
अपनी इस हार पर भी
क्योकि यह हार
हमारी नही
तुम्हारे व्यक्तित्व की है
तुम्हारे झुके हुए चेहरे
गवाह हैं
कि तुम
थक चुके हो
टूट चुके हो
खोखले हो चुके हो
क्योकि इस जीत का मोल
तुमने वहुत कुछ बेच कर चकाया है
अपना व्यक्तित्व
अपनी आत्मा
अपना चैन
और हर पल
यह खौफ तुम्हे जीने नही देता
कि यह ओढा हुआ पाडवी चोला
कभी भी तुम्हारा साथ छोड सकता है
और तब
तुम्हारी स्थिति
इस हार से कही अधिक शर्मनाक होगी ।

अंकुर

—रश्मि मलहोत्रा

नन्हा अकुर पनपा
पौधा बन लहराया
पला, सभला
ममतामयी ऊषा के अक मे ।
विकसित होगा—
पुष्प हो खिलेगा
सुगधित मुस्कराएगा
इसी आशा मे,
ममता पल-पल सवारती है
सजाती है ।
हर प्रभात आ
उसका मुख चूमती है।
ऊषा दुलार से
छूती है अग-अग
प्यार भरी बातें कर
गीत गुनगुनाती है
कोमल किरण पास आ
धीमे-थपथपाती है।
कहती शिशु किसलय से
खोल्लो निज अजुलि
बिखरा दू इसमे लो

पुलको का मधु पीयूष
भीगे जग-जीवन के
प्राणो का पोर-पोर
सपनो की धूप ताप
छूना आकाश छोर।
धरती और अम्बर की
बन जाना युग्म डोर।

स्नेह-स्मरण

—राज भटनागर "देवयानी"

(यह मेरे अपने भाई के लिए है जो 1965 की लडाई मे पाकिस्तान के सा न कार्गिल क्षेत्र मे वीरता से युद्ध करता हुआ 26 वर्ष की उम्र मे ही वीरगति को प्राप्त हो गया था)

जब बिछी तुम्हारे अधरो पर स्मिति,
महक उठे देव पर चढे सुमन ।
जब छिटका तुम्हारा मधुर हास्य,
गूज उठे पक्षियो के सुमधुर कलरव ।।
जहा तनी तुम्हारी भृकुटी तनिक,
मच गया भयकर प्रलय वही ।
जहा गिरे तुम्हारे स्वेद बिंदु,
लहलहा उठा धरती का कण वही ।।
जहा बहा तुम्हारा युवा लहू,
बन गया पावन तीर्थ धाम वही ।
माँ की असीम ममता भी,
सीमित न कर सकी तुम्हारा विशाल, व्योमाकार,
पिता के अतस्तल का हाहाकार भी,
न अवरुद्ध कर सका तुम्हारा निश्चित लक्ष्य मार्ग ।
तुमने तो अपनाया सैनिक जीवन,
तुम मे तो व्याप्त था समस्त राष्ट्र ।
हम कैसे कहे तुम्हे चिर कुमार,
तुमने तो वरण की वीर गति ।
तुम को पाकर तो अमरता भी,
हो गई चिर सौभाग्यवती ।।

उसी डाल पर

—विजय सती

मैंने विश्वास को
डाली पर खिलता
गुलाब मान
जीवन भर लिया महक से ।
मुरझाया तो नही—
महक भी नही गई
लेकिन
काटो मे बिंधा तडप रहा है
आज वही-फूल
वही उसी डाल पर ।

महानगर मे

—विजय सती

चिलकता रहा धूप मे
एक आत्मीय आकार
और सधे कदमो मे
एक ही झनझनाहट बाकी थी
"बस" छूट जाएगी ।

अनजानी राह

—विनीता बेदी

कभी, एक अनजानी राह पर
अनजाने लोगो की
नितान्त अपरिचित चेहरो की भीड मे
अजनबीयत के अहसास मे लिपटकर
अनायास ही मन हुआ
कि भाग जाऊँ यहा से
दूर हो जाऊँ उस अनजान सासो से महकते
वातावरण से,
अनजान चेहरे, अजनबी भाव
और परस्पर एक दूसरे के लिए भी
झिझक के भाव,
इन सभी से कटना चाहती थी मै।
मेरी कृत्रिम मुस्कराहट, थक कर
या शायद ऊबकर
विस्मृत हो जाना चाहती थी।
मगर फिर, चाहते हुए भी कदम न उठ सके
पॉव जैसे जमकर रह गए,
इन्कार कर दिया उन्होने
रत्ती भर भी हिलने से, क्योकि
इस अनजानी जगह मे अहसास हुआ था
एक खुशबू का, जिसने

बेडियाँ डाल दी थी, अपनेपन की, मेरे पैरो मे
यह खुशबू थी, उस आत्मीयता की
जो लगभग उन सभी चेहरो पर
पढी थी मैने
मगर, एक झीना सा सकोच का परदा
उसे छिपाए हुए था।
और मैं बढ गई, अपने चेहरे पर
एक जानदार मुस्कराहट लिए
उस अनजानी भीड की ओर
झिझक की दीवार को तोडने के लिए।
और आज, मैं भी
उसी भीड का
एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा हू।

श्रम

— शीला गुजराल

श्रम है जनता का चिर साथी
मानव मन का पहला प्यार।
निखिल ज्ञान विज्ञान राग रस
आभा प्रतिभा नीति कला यश,
भाषा-भूषा धर्म सभ्यता
श्रम ही सबका मूल आधार।
पर्वत इसको शीश झुकाते
सागर इसका हुक्म बजाते,
श्रम-साधन के हाथो खुलता
नव युग का नव-नूतन द्वार।
ज्योति पुंज बन पथ दिखाता
घोर तमिस्रा दूर भगाता,
काल चक्र को गति-विहीन कर
माया को करता निस्सार।
श्रम का विस्तृत दामन छूकर
जन-जीवन पनपा इस भू पर
श्रम ज्योति की आभा से ही
मानवता का हुआ निखार।
श्रम को मानव धर्म बनाकर
निखिल ज्ञान को कर्म बनाकर,
क्षुधा, तृषा, निन्दा लांछन से
मुक्त करो सारा ससार।

जाग

—शीला गुजराल

अति पुरातन अति नवीन का सगम करने,
बाल वृद्ध के दृष्टिगोण मे खाई भरने,
परम्परागत धर्म नीति नवालोकन करने,
जाग, युवक अब जाग !
चरम ज्ञान विज्ञान कला के शिखर ढूढने,
मानव के अवशेषो मे नव-प्राण फूकने,
नव आशा चिर ज्ञान सत्य का मन्थन करने,
जाग, युवक अब जाग !
सरल स्निग्ध सहानुभूति का बोध कराने,
पुनर्जागरण की पुकार दिशि-दिशि पहुचाने,
नवल पुरातन के बन्धन को दृढ बनाने,
जाग, युवक अब जाग !
विश्वव्याप शका-सघर्ष को दूर भगाने,
देश वर्ग जाति के मिथ्या भ्रम मिटाने
विश्व शाति का नव-नूतन अभियान चलाने,
जाग, युवक अब जाग !

हम चल वीर जवान

—शीला गुजराल

हम चले कदम पर कदम बढाते वीर जवान
हमको है अमर बनानी भारत मा की आन
नहरें सडके कूप बना कर
ट्रेक्टर, इजन खूब चला कर
बजर धरती मे भी हम को
भरने है नव-प्राण
हम वो र जवान !

भूख गरीबी दूर हटाने
विद्या का सदीप जलाने
आजादी को अमर बनाने
का प्रति पल है ध्यान
हम वीर जवान !

कल-पुरजे नव-नित्य बनाकर
साईकल, स्कूटर जीप चला कर
जीवन स्तर को आज उठाना
हम सब की है शान
हम वीर जवान !

'उपज बढाओ' ध्येय बना कर
सेतु पुल और बाध लगा कर
नगल कोसी से तीर्थ मे

हम को करना स्नान
हम वीर जवान।
कन्धे पर बन्दूक उठा कर
जय भारत माँ का नाद बजा कर
प्रजातन्त्र के वैरी से है
करना जग का त्राण
हम वीर जवान !

हे तरुवर इतना बतला दो

—सरला टडन

मौन खडे किसके इगित पर,
हे तरुवर इतना बतला दो ।
कौन कह गया यो रहने को,
धूप छाह सब कुछ सहने को,
कुछ तो बोलो, कुछ तो चहको,
थोडा मेरा गन बहला दो ।

तुम योगी हो, या कि वियोगी
लगते मौन रोग के रोगी
रहस छिपा है क्या अतर मे
सकेतो से ही समझा दो ।

क्या एकान्त तुम्हे भाता है,
या कोई मिलने आता है
मुझको अपना मीत मान कर
केवल एक गीत ही गा दो ।

छाया मे ले अपनी तरुवर
भटके पथिको को अपना कर
मौन समर्पण की महिमा का
दिशा दिशा मे मत्र गुजा दो ।

मै नदिया की शीतल धारा

—सरला टडन

मैं नदिया की शीतल धारा
हिम से तिछुडी, कितना रोई
अनचाहे अनचीन्हे पथ पर
भटक रही मै खोई खोई ।।
जाने कितने बाग बगीचे
मैने अश्रुकणो से सीचे ।
मै हू सिर्फ नदी, बहती हू
कोई भी आधार नही है
वैसे मै सागर की बेटी
पर मेरा घरबार नही है
किसको खोज रही धरती पर
इसको नही जानता कोई ।।
ऊचे पर्वत से ठुकराया
पर धरती ने गले लगाया
मै जीवन भर बहती रही
अपनी पीर न जग से कहती
मेरी सखी अनिद्रा देवो
दुनिया तान चदरिया सोई ।।
मै तो सिफ नदी हू मुझको
आजीवन बहना ही भर है

कब वसन्त आता है जाने
आता जाने कब पतक्षड है
जो भी क्यारी मिली मुझे तो
मैने बस हरियाली बोई
अनजाने अनचीन्हे पथ पर
भटक रही मैं खोई खोई ॥

हंसिकाए

—सरोजनी प्रीतम

पूंजी

नकल ही आधुनिक
छात्रो की पूंजी है
मुँह पर ताला है
हाथ मे कुजी है

नकल

पुरातत्व विभाग मे
चावल पर, सपूर्ण रामायण लिखी देख कर
अध्यापक बताते है
आजकल छात्र भी
नकल लगाने के लिए
बस ऐसे ही तरीके अपनाते है

दमयन्ती सोई रहो
नल चला गया
यह सुन कर ग्रामीण ने कहा
इसे भी क्या मेरी रामरक्खी
की तरह नीद आवे है
वह भी सोई रहे
पाणी-शाणी भरे ना
नल चला जावे है

बदनीय गाधी

—सरोज शर्मा

अहिंसा और शाति के,
तू मार्ग का है ज्ञाता ।
भारत, मेरे वतन का
निर्माता और विधाता ।
वो तो किया ही तूने
सामर्थ्य था जो तेरा ।
दुर्गम को भी सुगम कर
सम्भव था तू बनाता ।
भारत के इस चमन मे
जब आई तेज आधी ।
दीवार बनके उसको
तूने ही रोका गाधी ।
न तन से औ न मन से
बन हीनता दिखाई
इस देश की ही खातिर
सीने पे गोली खाई ।
इस नैया को भवर से
तूने ही था निकाला ।
कोटि कोटि जनमे
त् ही था एक निराला ।
तेरी ही साधना से
वह दिन है रोज आता ।
जब गर्व से जगत मे
जय हिन्द गूँज जाता ।

न बटेगी धारा

—सरोज कौशिक

मा तूने देखा था इक सपना
पायलेट बन उडेगा नन्हा अपना
तेरी आशाओ का भवन ओ मा
स्वप्नवत बना और मिट गया मा
तूने क्यो यह बात मुझे सिखलाई
झगडो न कभी तुम सब भाई भाई
फिर राड मचाने देखो मथरा आई
करने को अलग भाई से भाई
मै नही राम जो जाए बनवास
लौट कर आए और करे पुनर्वास
मै न छोडूँ धरती न अपना आकाश
न बटेगी धारा न होगा विनाश ॥
तेरा आचल तो सीमित मुझी तक है मा
भारत मा ने ढके लाख कोटि सुत वीर जवा
एक बार टूट गया जो उसका धागा
लेकर नयी गाठ जुडेगा वही अभागा
जन्म लिया है मैने, तेरी कोख से
जिसको सार्थक किया भूमि, की गोद ने
आज मुझे चुकाने दे भूमि का ऋण
मथरा का टूट जायेगा छुद्र प्रण
विदा की शुभ बेला है आई माँ
रक्त तिलक को तू, सहर्ष निज हाथ बढा
लौट कभी जब पुनर्जन्म पाऊगा
तेरी कसम तेरी ही कोख मे आऊँगा
तेरे सपनो को साकार बनाऊँगा ।

"सितारो की नाव"

—सावित्री परमार

थकाहारा
चल दिया सूरज
दूर अपने गाव ।

दोपहरी
उठ गई
सौदा उठाकर
आ गई ठण्डी
हवा पत्ते हसे
ताली बजाकर

लौट आये
सभी पक्षी
नदी मे धो पाव ।

साझ उतरी
पहाडो से
बीनकर लकडी
शिकारी की
तरह बैठी
जाल मे मकडी ।

धूप को
देने विदाई
खडी प्यारी छाव !
जगलो से
निकल कर
उल्लुओ ने वेष बदला
रात भर की
गश्त देने
पहन वर्दी चाद निकला
तैर चली
सितारो की
चांदनी मे नाव ।

राष्ट्रगीत

—सावित्री शर्मा

इन्द्रधनुष के तीन रग
तो हमने छाँट लिये ।
गहन अधेरे की सीमा
वाले दिन काट लिये ।।

धवल विचारो की पावनता
हरित धरा सुख वैभवशाली ।
केसरिया बाना वालो के
मन है राग द्वेष से खाली ।।

तीनो भुवन तीन पग मे
वामन से बाट लिये ।
इन्द्र धनुष के तीन रग
तो हमने छाट लिये ।।

याद हमे रहता आया जो
द्रोह-दमन करने अभिमानी ।
उनसे देश बचा रखने मे
वीरो ने दी है कुर्वानी ।।

यत्न-भगीरथ ने विरोध
के सागर पाट दिये ।
इन्द्र धनुष के तीन रग
तो हमने छाट लिये ।।

रोपे शुभ सकल्प एक हो
अमन चैन बगिया लहकेगी ।
सुनम खिलेगे सुख सुविधा के
गाव गली मह मह महकेगी ।।

भेद भाव मिट जाये
मन के खोल कपाट दिये ।
इन्द्र धनुष के तीन रग
तो हमने छाट लिये ।।

भगवान के घर मे

—सुनीता जैन

भगवान के घर में
रगो के कितने रग है
यह कटीला कीकर
इस नाज से पीलाया है
कि हर पीला रग
अपने रग पर शरम खाया है

समय का महत्व

—डॉ० सुशीला झा

जीवन के ये बीत जाने वाले क्षण
लौटेगे कभी नही
बीतने से पहले इन्हे
निष्ठा मे ढाल लो
श्रम से पाल लो
एहसासो मे सम्हाल लो
ये तुम्हारे हो जायेगे।
इन पर तुम्हारा स्वत्व
तुम्हे एक गहराई देगा
जीवन की टेढी राहो पर
चलने की चतुराई देगा
सीढी बन जायेगा पथ ही
मजिल तक ले जाने की।

परम्परा

—डॉ० सुधा जैन

परम्परा एक नदी
पुगो-युगो से बहती
तटो से टकराती
कुछ छोडती
कुछ बटोरती
चली आती
इसे रोको नही
बहने दो
जिधर ढलान होगा
दिशा पकडेगी
रुककर, बधकर
परम्परा सडेगी
ताजी हवा पीने दो
सुबह की धूप
सेकने दो
तोडो नही इसे
नकारो नही
हम इसके ऋणी है
हमारे शब्द
हमारी गध
इसी से फूटी

उधार की लम्बी परम्परा
कुछ लेते
कुछ देते
पीढियो का अटूट सिलसिला
तोडकर बचेगा जगल
सैकडो पीढियो ने
जगल से यात्रा शुरु कर
सभ्यता को
शहर पहुचाया
शहर सभ्यता को खा रहा
पर वापिस
नही ले जाओ जगल
जगली पशु
निकल जाएगे
शहर मे घुस आये
पशुओ से बचाओ ।
पर तोडो नही
रोको नही
नकारो नही
हम इसके ऋणी है ।